शिक्षकों की कलम से

हमारा प्रयास है कि इस कॉलम के माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। कुछ अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी ज़रूर साझा करें।

1. शंकर जी का पसीना और जंगल का बनना . अनुराधा जैन
2. कामकाजी बच्चे, स्कूल और बहुबचपन . अंजना त्रिवेदी
3. गणित-वणित . कामाक्षी चौहान

शंकर जी का पसीना और जंगल का बनना

अनुराधा जैन

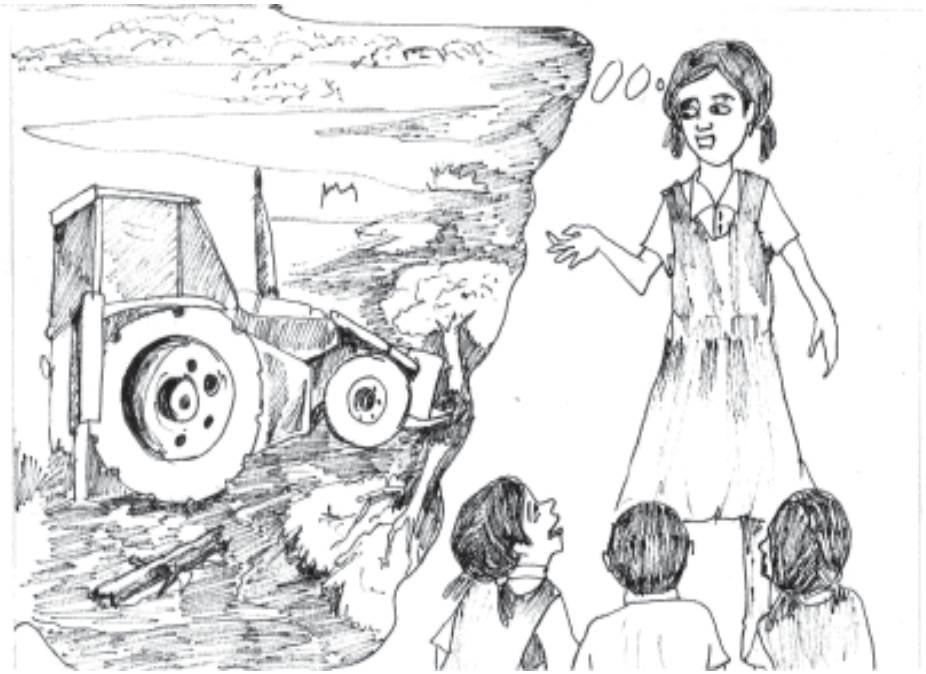

कक्षा चौथी में राजस्थान सरकार की पाठ्यपुस्तक में एक कविता है, *पेड़*, जिस पर मुझे काम करना था। मैंने भाषा के नज़रिए से पाठ योजना तैयार की थी जिसमें कविता पाठ और शब्द-अर्थ के साथ पेड़ों के बारे में चर्चा करना भी शामिल था। कविता पाठ के दौरान बच्चों का कहना था कि सभी ने यह कविता पढ़ ली है और याद भी कर ली है। मैंने कहा,

"ठीक है, हम एक खेल खेलते हैं। मैं कविता की किसी भी लाइन का एक शब्द बोलूँगी, आप लाइन पहचानना।" इस तरह खेल चला। जहाँ बच्चे अटके, उन्होंने किताब की मदद ले ली।

अगले चरण के रूप में सम्बन्धित विषय के बारे में मैंने प्रश्न किया कि पेड़ हमारे लिए क्यूँ ज़रूरी हैं। बच्चों ने कई सारे जवाब दिए जैसे शुद्ध हवा के लिए, घर बनाने के लिए, लकड़ियों के लिए, पेड़ों पर भी घर बनाए जा सकते हैं, पेड़ों से फल-दवाइयाँ मिलती हैं इत्यादि। पेड़ कैसे उगते हैं, कैसे पैदा होते हैं? बच्चों ने इस प्रश्न का भी जवाब दे दिया, "बीज बोया जाता है जिससे पेड़ बनता है।" साथ ही, अपने अनुभव भी साझा किए, "गत वर्ष हमने अपने विद्यालय में भी पेड़ लगाए थे।"

जंगल पर बच्चों की सोच

चर्चा को आगे ले जाते हुए, बात जब जंगलों के बनने पर पहुँची तो मैंने बच्चों से पूछा, "जंगल कैसे बनता होगा?" कक्षा में एक आवाज़ आई, "शंकर जी के पसीने से जंगल बना है," वह आवाज़ अशोक की थी। मैंने पूछा, "यह कैसे हुआ होगा?" एक लड़की सानू ने जवाब दिया, "शंकर जी छुपन-छुपाई खेल रहे थे जिससे उनके शरीर से पसीना निकला और जहाँ-जहाँ पसीना गिरा, वहाँ-वहाँ पेड़ उगते चले गए।" मैंने सवाल किया, "क्या ऐसा हो सकता है?" बच्चों ने कहा, "बिलकुल हो सकता है, शंकर जी के पास बहुत ताकत है।"

"तुमने कहाँ देखी है शंकर जी की ताकत?" बच्चों ने कहा, "टी.वी. में दिखाते हैं। सीरियल में हमने देखा है।" मैंने पूछा, "क्या सीरियल में जो कुछ दिखाया जाता है, वह सच होता है?" बच्चों ने कहा, "सभी कुछ तो सच नहीं होता परन्तु भगवान के बारे में जो भी दिखाते हैं, वह सब कुछ सच होता है।"

कुछ सोचकर मैंने कहा, "चलो, हम मिलकर इस पर सोचते हैं कि क्या वास्तव में ऐसा सम्भव है।"

मैं: शंकर जी कहाँ पर रहते हैं?

बच्चे: हिमालय पर।

मैं: हिमालय जो कि एक ठण्डा स्थान है, क्या वहाँ पसीना आता होगा?

बच्चे: नहीं आता होगा।

पर अशोक का कहना था, "वहाँ भी जब सूरज निकलता होगा, तब गर्मी पड़ती होगी जिससे बर्फ भी पिघलती है और ऐसे मौसम में खेलने से पसीना भी आ सकता है।" सभी बच्चों ने अशोक को समझाने की कोशिश की लेकिन अशोक अपनी बात पर कायम था। ज़्यादातर बच्चों का कहना था कि हिमालय पर बर्फ होती है जिससे वहाँ इतनी ठण्ड होती है कि पसीना आना बहुत मुश्किल है।

मैंने कहा, "चलो ठीक है, मान लेते हैं कि शंकर जी को पसीना आ सकता है, लेकिन यह कैसे पता चलेगा कि पसीने की कौन-सी बूँद से कौन-

सा पेड़ बना है? अच्छा बताओ, आम की गुठली से कौन-सा पेड़ बनेगा?"

बच्चेः आम का पेड़ ही आएगा।

मैंः और नींबू से?

बच्चे (एक स्वर में)ः नींबू का पेड़ ही आएगा।

मैंः फिर शंकर जी ने कैसे तय किया होगा कि कौन-सी बूँद से कौन-सा पेड़ बनेगा?

सानूः तुलसी का पौधा सबसे पहले आया होगा क्योंकि तुलसी का पौधा पतला होता है और बूँद भी पतली होती है। तो पतली-सी बूँद से तुलसी का पौधा उग सकता है।

मैंः पर बाकी पौधे कैसे आए होंगे? अगर ऐसा है, तो जंगल में सिर्फ तुलसी या तुलसी जैसे पेड़ ही दिखने चाहिए।

बच्चे उलझन में थे। मैंने पूछा, "क्या कोई और तरीका भी हो सकता है जिससे जंगल बनते होंगे? तुम सोचो और बताओ।"

शिवराजः पेड़ के फल सूखकर नीचे गिर जाते हैं। उनसे पेड़ बनते होंगे और ऐसे ही कई सारे पेड़ उगते होंगे और धीरे-धीरे जंगल बढ़ता होगा।

हिमांशुः बीज हवा से उड़कर भी दूसरी जगह चले जाते होंगे। बारिश आने से बीज अन्दर धँस जाते होंगे और फिर धीरे-धीरे पेड़ बन जाते होंगे। ऐसे ही जंगल बनते होंगे।

इस तर्क पर सभी की सहमति बनी। शंकर जी के पसीने वाली बात से, बीज से जंगल बनने वाली बात उनको ज़्यादा तार्किक लगी। फिर मैंने बात आगे बढ़ाई।

मैंः जंगल हमारे लिए कितने ज़रूरी हैं?

बच्चेः बहुत ज़रूरी हैं। इनसे हमें दवाइयाँ मिलती हैं, फल-फूल मिलते हैं, लकड़ियाँ मिलती हैं।

घर और जंगल

मैंः क्या हमें जंगलों को काटना चाहिए?

बच्चेः नहीं काटना चाहिए।

मैंः लेकिन हम तो जंगल में नहीं रह सकते। हमें रहने के लिए घर चाहिए। अच्छा सोचो, घर बनाने के लिए हमें पेड़ों की ज़रूरत पड़ती है क्या? चलो, घर बनाने के लिए क्या-क्या सामान लगता है, उसकी सूची बनाते हैं। तुम सब बताना, मैं बोर्ड पर लिखती जाती हूँ।

इस प्रकार हमने सामान की सूची बनाई जिसमें ईंट, सीमेंट, सरिया, मिट्टी, लकड़ियाँ, ज़मीन आदि चीज़ें आ गईं।

मैंः इनमें से घर बनाने के लिए सबसे पहले हमें क्या चाहिए?

अमनः ज़मीन। अगर ज़मीन होगी तो ही घर बन पाएगा।

मैंः ज़मीन के लिए तो फिर जंगल काटना पड़ेगा।

हिंमाशुः हम पेड़ों पर भी रह सकते

हैं, मोगली भी तो पेड़ों पर रहता था।

मैं: लेकिन क्या हम सभी पेड़ों पर रह सकते हैं?

हिमांशु: हम टेन्ट लगाकर भी तो जंगल में रह सकते हैं।

सूरज: अरे! वह तो उड़ जाएगा और बारिश में भीग भी जाएगा। वहाँ जानवर भी आ सकते हैं जिनसे हमें खतरा हो सकता है।

मैं: क्या हम बिना घर के रह सकते हैं?

बच्चे: घर तो चाहिए।

मैं: उसके लिए ज़मीन चाहिए और ज़मीन के लिए जंगल काटने पड़ेंगे। तुम सबने देखा था, *दिल्ली सफारी* में वह छोटा बाघ का बच्चा दिल्ली जाता है। वह दिल्ली क्यूँ जाता है?

हिंमाशु: एक बड़ी-सी रोबोट वाली मशीन ने जंगल काट दिया था इसलिए उनका घर छिन गया था। बन्दूक से जानवरों को भी मार दिया था। उस मशीन ने पूरा जंगल काट दिया था और एकदम मैदान हो गया था।

सूरज: यदि जंगल नहीं रहेंगे तो पक्षियों के घर भी चले जाएँगे।

मैं: फिर पक्षियों का क्या होगा?

आशा: सब मर जाएँगे।

शुभम: सारे पक्षी दूसरी जगह चले जाएँगे। पेड़ कट जाने से जानवरों के घर उजड़ जाते हैं, इसलिए जंगल बचाना ज़रूरी है।

मैं: आप बताओ, तो फिर हम क्या कर सकते हैं?

बच्चे: हम सरकार को निवेदन पत्र लिखेंगे।

बच्चे का संज्ञान और विद्यालय

बच्चे की भौतिक दुनिया में उसके खुद के अनुभव निराले और अनमोल हैं। किसी भी नई चीज़ को देखना, समझना, उसके प्रति जिज्ञासा प्रकट करना – बच्चे के मानस का हिस्सा होता है। बच्चे विभिन्न परिघटनाओं के बीच सम्बन्ध स्वयं बैठा लेते हैं। अपने नज़रिए से चीज़ों को समझने का प्रयास भी करते हैं। बुल्डोज़र को हिमांशु ने स्वतः ही एक रोबोट से जोड़कर देख लिया। बच्चों में कल्पना कर पाने और विचारों को व्यक्त कर पाने की क्षमता होती है और यह क्षमता नैसर्गिक है। विभिन्न स्तरों पर सीखना-समझना, उनके संज्ञान का हिस्सा है। संज्ञानात्मक विकास की असीमित क्षमता हर बच्चे में होती है। बौद्धिकता के अनन्त और असीमित संसार में बौद्धिकता और संज्ञान का विस्तार शिक्षा से चरितार्थ हो सकता है। यह शिक्षा औपचारिक माध्यमों से हो, ऐसा आवश्यक नहीं है, परन्तु उसमें मानवीय मूल्यों का होना आवश्यक है।

शिक्षा विमर्श जून 2017 में प्रकाशित रोहित धनकर के एक लेख से चेतना के विस्तार के रूप में शिक्षा का सन्दर्भ लेते हुए, जिसमें उन्होंने जॉन डुई के कथन को रखा है - बच्चा व्यक्तिगत सम्पर्कों की सीमित दुनिया में जीता है। सम्पर्कों की इस दुनिया में सबसे पहले उसके परिवार जन शामिल होते हैं जो किसी खास सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं। उनकी यह साझेदारी किन्हीं मूल्यों पर टिकी होती है। इन्हीं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के दायरों में बच्चे की भूमिका भी सुनिश्चित होने लगती है। उनसे अक्सर यह अपेक्षा होती है कि वे इस विरासत को आगे ले जाने का प्रयास करेंगे। इस सांस्कृतिक दायरे में जो भी कहा जाता है, अक्सर उसे निर्विवाद रूप में स्वीकार कर लेना भी मूल्यों का हिस्सा बन जाता है। बच्चे की सीमित दुनिया में शंकर जी के पसीने से जंगल बनने की मान्यता या इस प्रकार की अन्य मान्यताएँ, उनके बचपन के अनुभवों का हिस्सा बन जाती हैं। इन मान्यताओं पर प्रश्न करना, सिर्फ इनको नापना-तौलना नहीं रह जाता बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों जैसे संवेदी मुद्दों पर प्रश्न करना हो जाता है।

इस दिशा में विद्यालय का कार्य महज किसी विषय को पाठ्यपुस्तकों की प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार पढ़ानेभर का नहीं है। विद्यालय की भूमिका इससे कहीं ज़्यादा विस्तृत है। विद्यालयी परिवेश में कक्षा-कक्ष, बच्चे और अध्यापक का एकतरफा रिश्ता नहीं है बल्कि वह सार्थक संवाद के अवसरों को खोलकर, बच्चों को व्यक्तिगत मान्यताओं के सीमित दायरों से बाहर निकालकर बौद्धिक विचारों की ओर उन्मुख कर सकता है। यहाँ बच्चों का अपना सामाजिक दायरा भी होता है जिसे हम कक्षा का

सामाजीकरण भी कह सकते हैं। मान्यताओं को जाँचने-परखने के लिए उनकी ही आयु-वर्ग के बच्चे मौजूद होते हैं, सभी मिलकर विचार करते हैं, आपस में तर्क करते हैं, विश्लेषण कर सकते हैं और कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं। यह प्रक्रिया सटीकता के साथ सामान्यीकरण करके अवधारणाओं को स्थापित कर पाती है। इस व्यवस्था में न तो वयस्कों का नियंत्रण होता है, न ही सांस्कृतिक मान्यताओं को स्वीकारने की बाध्यता।

चर्चा और तर्क-विश्लेषण

एक मिथक से शुरू हुई यह चर्चा, जंगलों के संरक्षण पर जाकर खत्म हुई। संवाद का यह छोटा-सा टुकड़ा कक्षा-कक्ष की प्रक्रियाओं को दर्शाता है। बच्चे आपस में चर्चा कर रहे थे। सहमति-असहमति को ज़ाहिर कर रहे थे। शिक्षिका (मैं खुद) उपयुक्त सवाल पूछकर बच्चों को तर्क-विश्लेषण के मौके देने की कोशिश कर रही थी। यह पूरी प्रक्रिया जिन बातों की तरफ ध्यान आकर्षित करती है, वह है एक सिलसिलेवार तरीके से मान्यताओं की सत्यता को जाँचना, सवालों पर चर्चा करना, विश्लेषण करना, सम्भावनाओं पर विचार करना और आखिर में किसी तार्किक नज़रिए को बना पाना।

विषयगत दायरों में देखें तो यह संवाद हिन्दी की कक्षा का है परन्तु पर्यावरण के मुद्दों को शामिल करने की गुंजाइश रखता है। यहाँ बच्चों ने तर्कों को गढ़ते हुए किन्हीं खास नतीजों तक पहुँचने के लिए, अपने अनुभवों से बनी समझ का भी उपयोग किया है। शिक्षा का निहित अर्थ सिर्फ विषयों के इर्द-गिर्द की जानकारी जुटानाभर नहीं है। वरन् इसमें मानवीय मूल्य, चिन्तनशीलता एवं चेतना का विस्तार एक अनिवार्यता के रूप में उभरते दिखाई देते हैं। खासकर, राष्ट्र की उस संकल्पना में जिसमें लोकतांत्रिक मूल्यों एवं चिन्तनशील समाज की छवि को उकेरा गया हो। समाज के इस स्वरूप को धरातल पर लाने के लिए, शिक्षा को संकीर्ण नज़रिए से नहीं देखा जा सकता, न ही यह एक ज़रिया हो सकती है जो सिर्फ आगे बढ़ने के सुनहरे अवसर दिलाए। उसकी प्रासंगिकता किन्हीं मायनों में जटिल उत्तरदायित्व को निभाने की ओर इशारा करती है जिसमें सरकारी विद्यालय खास भूमिका में नज़र आते हैं।

बच्चों की अपनी मान्यताएँ

इन विद्यालयों में बच्चे विविध सांस्कृतिक मान्यताओं को लेकर आते हैं। इनके निजी अनुभव भी मान्यताओं से जुड़ जाते हैं। चौथी कक्षा की एक बच्ची को लगता था कि एक मन्दिर के पास से गुज़रने से उसे चक्कर आने लगते हैं। मन्दिर के सामने लगे पोस्टर को जब देखती है तो ऐसा लगता है कि वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगी। यह बात जब वह बता रही थी तो उसकी आँखों से झमाझम आँसू बह रहे थे। वह स्वयं भी किन्हीं उलझनों

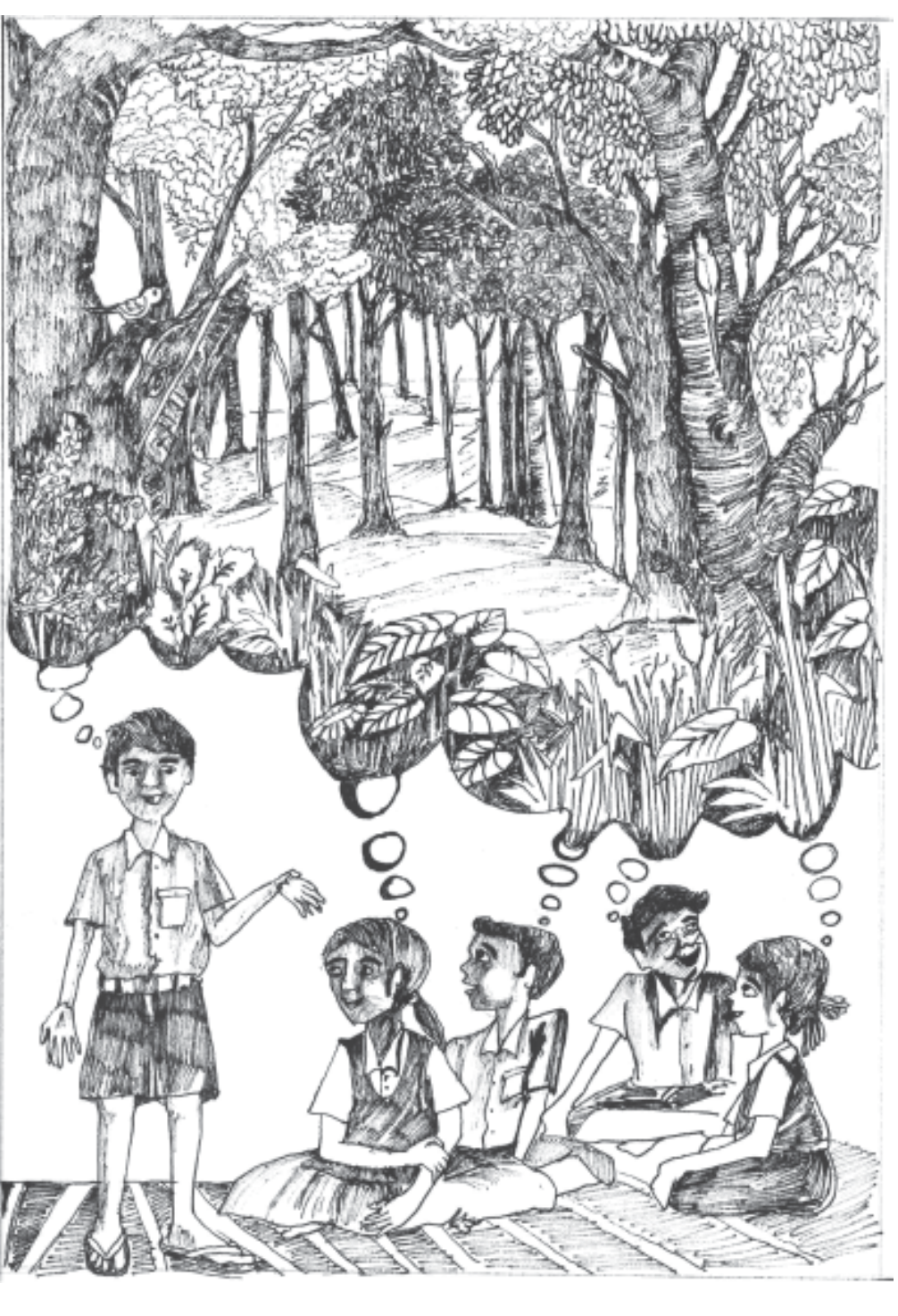

से घिरी थी। मैंने उसके साथ मन्दिर जाकर देखा, उस रास्ते से हम गुज़रे। मन्दिर का पूरा मुआयना किया और उसे घर भेज दिया। कुछ दिन बाद जब वह विद्यालय आई तो मैंने उसको कहा, "उस मन्दिर में मुझे कुछ नहीं महसूस हुआ। क्या कोई और बात हो सकती है?" इसके बाद मैं सिर्फ उसकी तबीयत के बारे में खबर लेती रही, मन्दिर का ज़िक्र उससे कभी नहीं किया। एक दिन वह स्वयं मेरे पास आकर बोली, "अब मुझे चक्कर नहीं आते, मुझे खून की कमी थी। डॉक्टर ने कहा है कि ठीक-से खाया-पिया करो।" यह घटना उस समय की है, जब यह अफवाह ज़ोरों पर थी कि कोई चुड़ैल सबके बाल काटकर ले जा रही है। सम्भवतः इस अफवाह का असर उसके मस्तिष्क पर भी पड़ा हो।

कक्षा-कक्ष की सार्थक प्रक्रियाएँ

कक्षा-कक्ष की प्रक्रियाएँ यदि विषय के साथ सार्थक संवाद को जगह दें, तो शिक्षा के वृहत उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। प्राथमिक कक्षाओं में विषयवार दक्षताओं को समेकित एवं एकीकृत रूप में भी देखा जा सकता है – कक्षा-कक्ष में संवाद के अवसरों की प्रचुरता, आपस में बातचीत करना, एक-दूसरे की बातों में निहित अर्थों को तलाशना, बच्चे यदि सक्रिय हों तो अपने आसपास के वातावरण को और गहराई से जानने-समझने की कोशिश करते हैं। वे सोच पाते हैं कि जो कुछ भी हमारे आसपास घट रहा है, उसके पीछे क्या तार्किक कारण हो सकते हैं। कक्षा उनके लिए सिर्फ पाठ्यपुस्तकों की जानकारी का स्रोत बनकर नहीं रह सकती, उसकी भूमिका इससे कहीं ज़्यादा है। उनके परिवेश से उपजने वाले विचारों को स्थान देना भी उतना ही आवश्यक है। पाठ्यचर्या में बच्चों की खोजी प्रवृत्ति विकसित करने एवं खोजबीन के अवसर देने की बात पुरज़ोर तरीके से की गई है। यह भी एक स्थापित तथ्य है कि बच्चे अपने परिवेश की जानकारी के साथ विद्यालय आते हैं। जानकारियों का यह संग्रह उन्हें कई तरीके के अवसर दे सकता है। इन अवसरों का उपयोग कई तरह की अवधारणाओं के निर्माण में किया जा सकता है।

अनुराधा जैनः वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, जयपुर में फैलोशिप प्रोग्राम पर हैं। इससे पूर्व ग्रामीण विकास ट्रस्ट, रतलाम में प्रोग्राम अधिकारी के रूप में कार्यरत थीं। मासिक ई-पत्रिका *बैक टू रूट्स* में *कम्युनिटी स्पीक* की स्तम्भ लेखिका रह चुकी हैं।
सभी चित्रः हीरा धुर्वेः भोपाल की गंगा नगर बस्ती में रहते हैं। चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही 'अदर थिएटर' रंगमंच समूह से जुड़े हुए हैं।